Journal Literary Aesthetics
Volume No: 12, Issue No: 1, Year: 2025 (January-June)
PP: 57-62
ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

मणिमञ्जरी नाटिका की नाट्य-रचना: कथाविन्यास, संघर्ष और नाटकीयता का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

विकाश कुमार झा

पूर्व शोधार्थी

विश्विद्यालय संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सारांश

संस्कृत नाट्य-शास्त्र की सुदीर्घ और अत्यंत परिष्कृत परंपरा में रूपकों और उपरूपकों की संरचना का अत्यंत सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है। उपरूपकों की विस्तृत श्रेणी में 'नाटिका' अपनी कोमलकांत पदावली, कैशिकी वृत्ति और श्रृंगारिक कथावस्तु के कारण सहृदयों एवं कला-मर्मज्ञों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय रही है। अठारहवीं शताब्दी के प्रख्यात रस-सिद्ध विद्वान पंडित विश्वेश्वर पांडेय द्वारा विरचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका नाट्य-शिल्प, कथाविन्यास और नाटकीय संघर्ष का एक सर्वोत्कृष्ट और प्रामाणिक दृष्टांत है। प्रस्तुत शोध-आलेख इस नाटिका की संरचनात्मक बुनावट का काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों—यथा अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, पंच-संधि और नाटकीय वृत्ति—के आलोक में एक समग्र और गहन मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में प्रामाणिक शास्त्रीय उद्धरणों के माध्यम से यह विस्तारपूर्वक विश्लेषित किया गया है कि नाटककार ने किस प्रकार नायक और नायिका के मध्य उत्पन्न होने वाले नव-अनुराग को बाह्य अवरोधों (विशेषकर ज्येष्ठा नायिका के प्रखर कोप) और नायिका के आंतरिक द्वंद्वों की भट्टी में तपाकर उसे एक अत्यंत सुगठित और परिपक्व नाटकीय स्वरूप प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त, संवाद-योजना में अंतर्निहित नाटकीयता, विदूषक द्वारा उत्पन्न हास्य से प्राप्त होने वाली अबाध कथा-गति, और अंतिम अंक में प्रस्तुत किए गए अत्यंत भव्य एवं उल्लासपूर्ण वैवाहिक चरमोत्कर्ष का भी इस आलेख में विस्तृत अन्वेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: मणिमञ्जरी, विश्वेश्वर पांडेय, संस्कृत नाट्यशास्त्र, नाटिका, उपरूपक, नाट्य-शिल्प, कथाविन्यास, अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, पंच-संधि, नाटकीय संघर्ष, कैशिकी वृत्ति, श्रृंगारिक कथावस्तु, विदूषक, वैवाहिक चरमोत्कर्ष

1. प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय की अत्यंत गौरवशाली और समृद्ध परंपरा में दृश्य-काव्य (नाटक) को ब्रह्मानंद के पूर्ण समकक्ष माना गया है, क्योंकि यह काव्य का वह अद्वितीय स्वरूप है जो श्रव्य और दृश्य—दोनों ही माध्यमों से सामाजिकों (दर्शकों) के अंतःकरण को सीधे आह्लादित करता है [1]। भारतीय मनीषा में नाटक को जीवन का सर्वाधिक प्रामाणिक अनुकरण माना गया है। आचार्य धनंजय ने 'दशरूपक' में रूपक (नाटक) का लक्षण स्पष्ट करते हुए उद्घोष किया है:

"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् रूपं दृश्यतयोच्यते।" (दशरूपक 1.7)

अर्थात्, मानव जीवन की विविध अवस्थाओं का अनुकरण ही नाट्य है, और दृश्य होने के कारण इसे रूपक कहा जाता है। भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र से लेकर परवर्ती आचार्यों तक, भारतीय काव्यशास्त्रियों ने नाटकों की कथावस्तु, नेता (नायक) और रस-निष्पत्ति का अत्यंत तार्किक और मनोवैज्ञानिक विभाजन प्रस्तुत किया है [2]। इसी शास्त्रीय विकास-क्रम में जब नाटकों का सूक्ष्म वर्गीकरण रूपक (10 प्रकार) और उपरूपक (18 प्रकार) में संपन्न हुआ, तो 'नाटिका' को उपरूपकों में सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक ललित स्थान प्राप्त हुआ [3]। नाटिका वस्तुतः 'नाटक' और 'प्रकरण'—इन दोनों मुख्य विधाओं के मनोहारी गुणों का एक अद्भुत सम्मिश्रण है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

अठारहवीं शताब्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र और नाट्य-परंपरा को अपनी विलक्षण रचनात्मक प्रतिभा से समृद्ध करने वाले पर्वतीय विश्वेश्वर पांडेय का नाम अत्यंत आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है [4]। उनके द्वारा विरचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की एक ऐसी अनमोल मणि है, जिसमें नाट्य-शिल्प की पूर्णता और काव्यात्मक लालित्य का मणिकांचन संयोग सर्वत्र प्राप्त होता है [5]। यद्यपि संस्कृत अकादमिक जगत् में कालिदास और हर्ष की प्रारंभिक नाटिकाओं पर प्रचुर अनुसंधान कार्य संपन्न हुआ है, तथापि परवर्ती काल की इस अत्यंत महत्वपूर्ण कृति के कथाविन्यास और नाटकीय संघर्ष का सूक्ष्म मूल्यांकन लंबे समय तक उपेक्षित रहा है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी दिशा में एक अत्यंत गंभीर अकादमिक प्रयास है, जिसका मूल उद्देश्य 'मणिमञ्जरी' के सुगठित कथा-संगठन, उसमें निहित मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों और उसके सफल रंगमंचीय विधान का समग्र और काव्यशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करना है।

2. नाटिका का स्वरूप और कथाविन्यास की आधारभूमि

किसी भी नाटक की रंगमंचीय सफलता और उसकी साहित्यिक अमरता पूर्णतः उसके कथाविन्यास (कथानक की बुनावट) पर निर्भर करती है। आचार्य धनंजय ने दशरूपक में नाटिका का अत्यंत स्पष्ट और वैज्ञानिक लक्षण निरूपित किया है:

"नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।

प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥" (दशरूपक 3.43)

अर्थात्, नाटिका की कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक न होकर पूर्णतः कल्पित (उत्पाद्य) होती है [6]। इसमें स्त्री पात्रों की अधिकता होती है और यह चार अंकों में निबद्ध होती है। इसका नायक कोई प्रख्यात, धीरललित प्रकृति का राजा होता है, जो कला-प्रेमी और भावुक होता है, तथा नायिका राजमहल के अंतःपुर से संबद्ध कोई अत्यंत रूपवती एवं मुग्धा कन्या होती है [7]। पंडित विश्वेश्वर पांडेय रचित 'मणिमञ्जरी' का कथाविन्यास इन सभी स्थापित शास्त्रीय मर्यादाओं का अक्षरशः और अत्यंत निष्ठापूर्वक पालन करता है [8]।

नाटककार ने इस नाटिका के चार अंकों में कथा का अत्यंत सधा हुआ और आनुपातिक विभाजन किया है। कथा का आरंभ नायक (राजा) द्वारा नायिका (मणिमञ्जरी) के अलौकिक रूप-सौंदर्य के श्रवण और तदुपरांत उपवन में उनके प्रथम दर्शन से होता है [9]। इस नाटिका के कथाविन्यास की सबसे बड़ी और विलक्षण विशेषता यह है कि इसमें कोई भी दृश्य, संवाद या घटना अनावश्यक अथवा प्रक्षिप्त प्रतीत नहीं होती। राजमहल का सुरम्य क्रीड़ा-उद्यान, वसंतोत्सव का भव्य आयोजन, और महारानी का अत्यंत सुरक्षित अंतःपुर—ये सभी स्थान केवल मूक पृष्ठभूमि नहीं हैं, बल्कि वे कथा-प्रवाह के अत्यंत सक्रिय और जीवंत अंग हैं। नाटककार ने आधिकारिक कथा (मुख्य कथा) के साथ-साथ विदूषक और सखियों की प्रासंगिक कथाओं का इस प्रकार कलात्मक संयोजन किया है कि मुख्य कथा का तीव्र प्रवाह कहीं भी बाधित या शिथिल नहीं होता।

3. अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं का समन्वयात्मक नियोजन

भारतीय नाट्यशास्त्र के सुदृढ़ सिद्धांतों के अनुसार किसी भी कार्य (उद्देश्य) की अंतिम सिद्धि के लिए पांच 'अर्थप्रकृतियों' (कथा के मूल प्राण-तत्त्व) का क्रमिक एवं तार्किक नियोजन अनिवार्य माना गया है [10]। महर्षि भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया है:

"बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चैवावस्थासमन्विताः॥" (नाट्यशास्त्र 21.21)

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

इन पांच अर्थप्रकृतियों के साथ-साथ पांच कार्यावस्थाओं (आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, और फलागम) का समन्वय ही कथानक को गति प्रदान करता है [11]। 'मणिमञ्जरी' नाटिका में इन दोनों शास्त्रीय तत्त्वों का अत्यंत मनोवैज्ञानिक और निर्दोष प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

सर्वप्रथम 'बीज' नामक अर्थप्रकृति और 'आरंभ' नामक कार्यावस्था का स्पष्ट दर्शन प्रथम अंक में ही हो जाता है, जब राजा के हृदय में मणिमञ्जरी को प्राप्त करने की तीव्र लालसा का बीज अंकुरित होता है [12]। इसके पश्चात जब नायक और उसका अभिन्न मित्र (विदूषक) नायिका से गुप्त रूप से मिलने की विविध योजनाएं बनाते हैं, तो वहां 'बिंदु' (कथा को छिन्न-भिन्न होने से बचाने वाला तत्त्व) और 'प्रयत्न' अवस्था का अत्यंत सफल चित्रण उद्घाटित होता है [13]।

कथानक में जब नायिका से राज-उद्यान में गुप्त भेंट की योजना सफल होती प्रतीत होती है, तो वहां 'प्राप्त्याशा' (फल-प्राप्ति की आशा) का सुखद उदय होता है [14]। किंतु ठीक उसी क्षण ज्येष्ठा नायिका (महारानी) के आकस्मिक और क्रुद्ध आगमन से यह आशा अत्यंत क्षीण हो जाती है। चतुर्थ और अंतिम अंक में जब सभी भ्रमों के बादल छंट जाते हैं और रानी स्वयं मणिमञ्जरी का हाथ राजा के हाथ में सौंप देती है, तो 'नियताप्ति' (निश्चित प्राप्ति) और अंततः 'फलागम' (संपूर्ण फल की निर्विघ्न प्राप्ति) अवस्थाएं एक साथ घटित होकर नाटिका को पूर्णता प्रदान करती हैं।

4. पंच-संधियों का क्रमिक विकास और कथानक की गतिशीलता

अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के सटीक योग से ही नाटक में संधियों का निर्माण होता है, जो कथा के विभिन्न खंडों को आपस में पिरोने का कार्य करती हैं [15]। आचार्य धनंजय के अनुसार—"अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति"—अर्थात् एक ही मुख्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए विभिन्न कथा-खंडों का परस्पर जुड़ना ही संधि है। 'मणिमञ्जरी' में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श (अवमर्श) और निर्वहण—इन पांचों संधियों का अत्यंत कलात्मक और शास्त्रीय प्रयोग संपन्न हुआ है [16]।

प्रथम अंक में जहां नायक और नायिका के प्रथम दर्शन से नव-अनुराग उत्पन्न होता है, वहां 'मुख संधि' की स्थापना होती है। द्वितीय अंक में जहां इस प्रेम का विस्तार होता है, परंतु मिलने में अनेक सामाजिक और राजमहलीय बाधाएं दिखाई देती हैं, वहां 'प्रतिमुख संधि' का सौंदर्य निखरता है [17]। तृतीय अंक में कथा अपनी सबसे अधिक उलझी हुई और जटिल अवस्था में प्रवेश करती है। यह 'गर्भ संधि' का प्रामाणिक स्थल है, जहां प्रेम के प्रकट होने और रानी के प्रचंड क्रोध के बीच लुका-छिपी का अत्यंत नाटकीय और हृदयग्राही दृश्य उपस्थित होता है [18]।

जब महारानी को राजा और मणिमञ्जरी के इस प्रच्छन्न प्रेम-प्रसंग का पूर्ण भान हो जाता है और वह अत्यंत कुपित होकर मणिमञ्जरी को कठोर कारावास में डाल देती है, तब वहां 'विमर्श संधि' का पूर्ण और भयावह प्रभाव दिखाई देता है। यहां कथा एक ऐसे अभेद्य अवरोध पर आकर ठहर जाती है, जहां से मिलन का आगे का मार्ग अत्यंत अंधकारमय प्रतीत होता है। अंततः चतुर्थ अंक में जब सभी रहस्यों पर से पर्दा उठता है, तो 'निर्वहण संधि' के सशक्त माध्यम से कथा अपने सुखद, शांत और मंगलमय अंत तक पहुंच जाती है।

5. नाटकीय संघर्ष: अंतर्द्वंद्व और बाह्य अवरोध का मनोवैज्ञानिक चित्रण

बिना किसी प्रबल संघर्ष (द्वंद्व) के कोई भी नाटक या कथा जीवंत और प्रभावकारी नहीं हो सकती। 'मणिमञ्जरी' की कथावस्तु का वास्तविक प्राण इसका अत्यंत तीक्ष्ण नाटकीय संघर्ष ही है [19]। पंडित विश्वेश्वर पांडेय ने इस संघर्ष को अत्यंत कुशलतापूर्वक दो भिन्न स्तरों पर उकेरा है: पहला नायक और नायिका का व्यक्तिगत मानसिक अंतर्द्वंद्व, और दूसरा राजमहल की जटिल परिस्थितियों से उत्पन्न दुर्जेय बाह्य अवरोध।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

नायिका के मानसिक स्तर पर एक अत्यंत गहरा और पीड़ादायक अंतर्द्वंद्व निरंतर विद्यमान रहता है। वह एक ओर राजा के प्रति अपने अगाध और निश्छल अनुराग से विवश है, तो दूसरी ओर अपनी मुग्धा प्रकृति के कारण अत्यंत लज्जाशील है और अपनी स्वामिनी (रानी) के प्रति अपने अटूट कर्तव्य-बोध से भी बंधी हुई है [20]। यह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक संघर्ष उसके संवादों और शारीरिक चेष्टाओं में अत्यंत स्पष्ट रूप से झलकता है।

बाह्य संघर्ष का सबसे बड़ा और शक्तिशाली केंद्र ज्येष्ठा नायिका (महारानी) है। संस्कृत नाटिकाओं की सुदीर्घ परंपरा में ज्येष्ठा नायिका सदैव अत्यंत प्रौढ़, मानिनी, अधिकार-संपन्न और ईर्ष्यालु प्रवृत्ति की होती है [21]। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में मानिनी नायिका का स्वभाव स्पष्ट किया है—"मानिनी जनकोपाद्वा...।" 'मणिमञ्जरी' में महारानी का यह कोप, अंतःपुर पर उसका कड़ा पहरा, और उसकी चतुर दासियों द्वारा राजमहल में बिछाया गया गुप्तचरों का जाल कथा में निरंतर एक प्रगाढ़ तनाव बनाए रखता है। राजा का अपने विदूषक के साथ मिलकर रानी की आंखों में धूल झोंकने का निरंतर प्रयास और बार-बार रंगे हाथों पकड़े जाने का प्रबल भय नाटकीयता को उसके चरम पर पहुंचा देता है।

6. संवाद-शिल्प, कैशिकी वृत्ति और नाटकीयता का उत्कर्ष

किसी भी दृश्य-काव्य की रंगमंचीय नाटकीयता पूर्णतः उसके संवादों की गतिशीलता और अभिनेयता पर निर्भर करती है। 'मणिमञ्जरी' का संवाद-शिल्प अत्यंत प्रगल्भ, संक्षिप्त, व्यंजना-प्रधान और पूर्णतः पात्रानुकूल है [22]। जहां नायक (राजा) के संवादों में संस्कृत भाषा की प्रौढ़ता, गांभीर्य और आलंकारिक काव्यात्मकता कूट-कूट कर भरी है, वहीं नायिका, विदूषक और सखियों के संवाद प्राकृत भाषा की अत्यंत स्वाभाविक कोमलता और यथार्थवादिता से युक्त हैं।

नाटिका में 'कैशिकी वृत्ति' का निर्वाह अत्यंत कुशलता और कोमलता के साथ किया गया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कैशिकी वृत्ति की अत्यंत रमणीय परिभाषा दी है:

"या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता।

कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कैशिकीं वृत्तिमुदाहरन्ति॥" (नाट्यशास्त्र 20.53)

अर्थात्, जिसमें अत्यंत कोमल और आकर्षक वेशभूषा हो, जिसमें स्त्री-पात्रों की बहुलता हो, जो नृत्य और गीतों से परिपूर्ण हो, तथा जिसमें शृंगारिक भावों का संचार हो, वह कैशिकी वृत्ति है [23]। नाटककार ने इसके चारों अंगों (नर्म, नर्म-स्फिंज, नर्म-स्फोट और नर्म-गर्भ) का संवादों में अत्यंत सटीक और अवसरानुकूल प्रयोग किया है।

विदूषक का चरित्र इस नाटिका में नाटकीयता का एक अत्यंत सबल और अनिवार्य आधार है। वह केवल राजा का मित्र या चाटुकार ही नहीं है, बल्कि वह कथा-प्रवाह का प्रमुख संचालक भी है [24]। उसकी अत्यंत मूर्खतापूर्ण योजनाएं, स्वादिष्ट भोजन के प्रति उसकी असीम लोलुपता, तथा ऐन मौके पर किसी बड़े रहस्य को उजागर कर देने की उसकी स्वाभाविक आदत, अत्यंत गंभीर संघर्षों और तनावों के बीच भी दर्शकों के लिए हास्य का एक प्रबल और विश्रामदायक स्रोत उत्पन्न करती है।

7. रंगमंचीय भव्यता और वैवाहिक उल्लास का चरमोत्कर्ष

दृश्य-काव्य की अंतिम सार्थकता और पूर्णता उसके रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण और दर्शक के हृदय में उत्पन्न होने वाले लोकोत्तर आनंद में ही निहित होती है। 'मणिमञ्जरी' के चतुर्थ और अंतिम अंक में (निर्वहण संधि के अंतर्गत) नाटककार ने रंगमंचीय भव्यता, दृश्य-विधान और सांस्कृतिक उल्लास का जो अद्भुत चित्रांकन किया है, वह संस्कृत नाट्य-परंपरा में अद्वितीय है। भरतमुनि के सुदृढ़ सिद्धांतानुसार नाटक का अंत सदैव अत्यंत मंगलमय, सुखद और लोकरंजक ही होना चाहिए:

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

"निर्वहणं तु तज्ज्ञेयं यत्रार्थः समुपस्थितः।"

जब कथा के अंत में सभी संशयों का निवारण हो जाता है और महारानी स्वयं सहर्ष नायिका को राजा को सौंपने के लिए तत्पर होती है, तब मंच पर एक अत्यंत भव्य वैवाहिक समारोह का दृश्य सजीव हो उठता है। भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, अपितु एक अत्यंत भव्य, कलात्मक और मांगलिक उत्सव है। नाटककार ने इस अवसर पर रंगमंच के पूरे वातावरण को अत्यंत उत्सवधर्मी और सिनेमाई भव्यता से परिपूर्ण कर दिया है।

नायक (राजा) का विवाह-मंडप में एक अत्यंत गरिमामय और नाटकीय प्रवेश होता है। यह नायक का वह प्रवेश है जो संपूर्ण नाटकीय संघर्ष के उपरांत एक विजयी नायक के अत्यंत भव्य और नाटकीय प्रवेश के रूप में चित्रित किया गया है। इस अत्यंत भव्य वैवाहिक समारोह की पृष्ठभूमि में गूंजने वाली मांगलिक वाद्ययंत्रों की मधुर ध्वनि, पुरोहितों द्वारा किए जा रहे वैदिक मंत्रोच्चार का मंगलमय आभास, और रंगमंच पर सखियों द्वारा प्रस्तुत किया गया अत्यंत ललित मांगलिक नृत्य दर्शकों को एक अलौकिक और विस्मयकारी आनंद से भर देता है। शृंगार रस और इस अद्वितीय सांस्कृतिक वैभव का यह सम्मिश्रण एक ऐसा दृश्य-विधान प्रस्तुत करता है जो आज के अत्यंत उन्नत और चकाचौंध भरे आधुनिक रंगमंच की भव्य प्रस्तुतियों के पूर्णतः समकक्ष ठहरता है। यह वैवाहिक चरमोत्कर्ष नाटिका की समस्त पूर्ववर्ती उलझनों को एक अत्यंत संतोषजनक, सुखांत और कलात्मक पूर्णता प्रदान करता है।

8. निष्कर्ष

समग्र काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन के आधार पर यह अत्यंत स्पष्ट और निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पंडित विश्वेश्वर पांडेय रचित 'मणिमञ्जरी' नाटिका केवल मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की एक साधारण शृंगारिक कृति मात्र नहीं है, अपितु यह भारतीय नाट्य-शिल्प, सुगठित कथा-संगठन और अत्यंत उन्नत रंगमंचीय प्रयोगों का एक सर्वोत्कृष्ट प्रतिदर्श है।

नाटककार ने आचार्य धनंजय के दशरूपक और भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित सभी कठोर शास्त्रीय नियमों—यथा अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, पंच-संधि और कैशिकी वृत्ति—का न केवल अत्यंत निष्ठापूर्वक पालन किया है, बल्कि अपनी स्वतंत्र सृजनात्मक प्रतिभा से उन्हें एक अत्यंत जीवंत और समकालीन रूप भी प्रदान किया है। नायिका का अत्यंत गहरा आंतरिक मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और ज्येष्ठा नायिका के प्रचंड कोप से उत्पन्न दुर्जेय बाह्य अवरोध कथावस्तु में जो निरंतर नाटकीय तनाव उत्पन्न करते हैं, वह कथा को आद्योपांत अत्यंत रोचक और जिज्ञासापूर्ण बनाए रखता है।

अंततः, विदूषक के निर्मल हास्य-परिहास से सजी अत्यंत चुटीली संवाद-योजना और अंतिम अंक में प्रस्तुत किया गया भारतीय विवाह की असीमित भव्यता का अत्यंत नाटकीय और उल्लासपूर्ण दृश्य इस नाटिका को रंगमंच के सर्वथा अनुकूल बनाता है। 'मणिमञ्जरी' संस्कृत नाटिकाओं की उस अत्यंत समृद्ध और गौरवशाली परंपरा का एक अत्यंत उज्ज्वल और देदीप्यमान रत्न है, जो यह सिद्ध करता है कि संस्कृत नाटक रंगमंच पर मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक उल्लास को अभिव्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम हैं।

संदर्भ-सूची

1. र. श. मिश्र, संस्कृत नाट्य-मीमांसा, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2012, पृष्ठ 45–50.
2. प. के. उपाध्याय, नाट्यशास्त्र का दार्शनिक अध्ययन, नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2015, पृष्ठ 112–118.
3. भ. त्रि. शास्त्री, भारतीय नाट्यशास्त्र के नए क्षितिज, प्रयागराज: अक्षयवट प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 88–95.

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

4. व. न. पांडेय, अठारहवीं शताब्दी का संस्कृत साहित्य, वाराणसी: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, 2008, पृष्ठ 150–155.
5. म. का. झा, विश्वेश्वर पांडेय: व्यक्तित्व और कृतित्व, भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2016, पृष्ठ 75–82.
6. धनंजय, दशरूपकम्, (संपादक: श्रीनिवास शास्त्री), मेरठ: साहित्य भंडार, 2014, पृष्ठ 85–90.
7. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, (संपादक: शालिग्राम शास्त्री), वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृष्ठ 175–182.
8. प. विश्वेश्वर पांडेय, मणिमञ्जरी नाटिका, (संपादक: डॉ. रमाकांत शुक्ल), नई दिल्ली: देववाणी परिषद्, 2011, पृष्ठ 15–22.
9. के. द्विवेदी, नाटकीय तत्वों का विधान, दरभंगा: प्राच्य विद्या अनुसंधान, 2020, पृष्ठ 55–61.
10. न. कु. उपाध्याय, संस्कृत नाटकों में अर्थप्रकृतियां और संधियां, नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2013, पृष्ठ 140–148.
11. भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्, (संपादक: डॉ. पारसनाथ द्विवेदी), वाराणसी: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, 1999, पृष्ठ 250–258.
12. व. शास्त्री, कथाविन्यास के मूल तत्त्व, जयपुर: राजस्थान ग्रंथागार, 2022, पृष्ठ 40–48.
13. अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, (संपादक: डॉ. रामेश्वर दत्त), दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 310–318.
14. य. त्रि. शर्मा, कार्यावस्था और पंच-संधि, पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2015, पृष्ठ 65–72.
15. ग. च. त्रिपाठी, संधियों का काव्यात्मक नियोजन, दिल्ली: नाग पब्लिशर्स, 2016, पृष्ठ 210–218.
16. स. मिश्र, मणिमञ्जरी में संघर्ष और समाधान, प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2023, पृष्ठ 22–29.
17. र. का. शुक्ल, संस्कृत गद्य और पद्य में नाटकीयता, नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 2018, पृष्ठ 145–152.
18. प. के. झा, कालिदास और परवर्ती नाट्यकार, दरभंगा: कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, 2014, पृष्ठ 77–84.
19. ज. कु. पांडेय, नाटकीय तनाव का काव्यशास्त्रीय विवेचन, वाराणसी: कला प्रकाशन, 2011, पृष्ठ 134–140.
20. भ. व. सिंह, मुग्धा नायिका का अंतर्द्वंद्व, दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 2021, पृष्ठ 50–58.
21. स. ति. पाठक, संस्कृत साहित्य में ज्येष्ठा नायिका, जयपुर: पब्लिकेशन स्कीम, 2015, पृष्ठ 200–208.
22. वि. सि. ठाकुर, संवाद-शिल्प और नाटकीय कौशल, भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2022, पृष्ठ 120–128.
23. र. श. त्रिपाठी, कैशिकी वृत्ति का शास्त्रीय अध्ययन, वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती, 2008, पृष्ठ 175–182.
24. म. त्रि. भार्गव, विदूषक: हास्य और कथा-प्रवाह का सेतु, दिल्ली: कला प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 90–98.

© Copyright @ Authors